ब्रह्मवैवर्त पुराण में ईश्वर का स्वरूपः परमसत्ता और उसका स्वरूप

*डॉ. भास्कर शर्मा

परमेश्वर का स्वरूप बिल्कुल असंदिग्ध है।[1] पर्वत, समुद्र जैसी जितनी सावयव वस्तुएं हैं सबो के कारण है क्योंकि सभी घट की तरह कार्य है। उपर्युक्त प्रकार की सभी वस्तुएं कार्य है, इसके लिये दो प्रमाण है। एक तो वे सावयव है दूसरे वे मध्यम परिमाण के है। क्षिति, जल, अग्नि और वायु परमाणु तथा मन भी कार्य नहीं है, क्योंकि वे अणु तथा निरवयव है। किन्तु इनके अतिरिक्त पर्वत और समुद्र, सूर्य और चन्द्र, तारे और नक्षत्र जैसी सावयव वस्तुएं हैं, सभी के कुछ न कुछ कारण अवश्य है क्योंकि एक तो ये सावयव है दूसरे ये न तो विभु है और न अणु ही हैं। ये सभी वस्तुएं कई उपादान, कारणों के संयोग से बनी हुई है अतः इनका कोई न कोई बुद्धिमान कर्ता अवश्य होगा, क्योंकि बिना किसी बुद्धिमान कर्ता के संचालन से इन वस्तुओं के उपादान कारणों में वैसा आकार या रूप नहीं आ सकता जैसे उनमें पाया जाता है। अर्थात् उसे सर्वज्ञ भी होना चाहिये क्योंकि सर्वज्ञ ही परमाणु जैसी सूक्ष्म सत्ताओं का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

विश्व की समस्त वस्तुएं नश्वर और क्षणिक है। संसार की सभी वस्तुएं अपनी सत्ता के लिये एक दूसरे पर निर्भर है और आकस्मिकता है। विश्व की आकस्मिकता का प्रमुख आधार आवश्यकता है। आकस्मिक और नश्वर वस्तु की जड़ में एक आवश्यक और अनिवार्य सत्ता को स्वीकार करना होगा। यही आवश्यक सत्ता ही विश्व की समस्त वस्तुओं का आधार है। इसी परमसत्ता का उल्लेख हमारे वेदों उपनिषदों में ईश्वर या ब्रह्म आदि शब्दों द्वारा किया गया है। ईशावस्योपनिषद् में यह उक्ति मिलती है कि जो कुछ जगत में है वह ईश्वर से है – 'ईशावस्यमिदं सर्व यात्किचिज्जिगत्यां जगत्।' भारत मत में अवयैक्तिक तथा वैयक्तिक दोनों सर्वेश्वरवादी उदाहरण मिलते हैं। ईशावस्योपनिषद् में लिखा है कि ''सब कुछ परमात्मा से और सब कुछ में परमात्मा है।[2]

यह सम्पूर्ण संसार परमसत्ता में प्रतिबिम्ब रूप में अवभासित होता है यह प्रतिबिम्ब उसी परमसत्ता की अभिव्यक्ति है।[3] परन्तु उस परमसत्ता को अपने से भिन्न किसी बिम्बात्मक वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती और यह जीवभाव, परिमिति ईश्वर, अविधा भाव माया अविवेक यथार्थज्ञान, वासना, प्रकृति मिथ्याज्ञान, क्लेश, क्षय, कर्मवासना, विद्या, परमाणु नेष्यकर्म्य विवेक और कर्म साम्यादि समस्त प्रपंच को अपने में प्रतिबिम्बित करता है।

उपनिषद की भाषा में परमसत्ता अंतिम तत्व है, सर्वाधार है, सभी वस्तुओं का मूल स्थान है। तैतरीय उपनिषद् में बताया गया है कि केवल वही सत्ता इस जगत का मूल कहा जा सकता है जिससे सभी वस्तुओं की उत्पत्ति हो। जो सभी वस्तुओं की सत्ता का आधार हो और जिसमें अन्ततः इन सभी वस्तुओं का लय हो जाती है।[4] उपनिषद में जगत का आदि, आधार और अन्त ब्रह्म है। वाह्य अतः ब्रह्म ही परमसत्ता है। इसे ही आत्म तत्त्व भी कहते हैं।

परमसत्ता क्या है, इसका उत्तर दो दृष्टिकोण से उपनिषद् में बतलाया गया है – बाह्य और आंतरिक। बाह्य और आंतरिक में वस्तुतः या तत्वतः भेद नहीं अभेद है। तात्पर्य यह कि परमसत्ता एक अद्वैत रूप है जिसे बाह्य दृष्टि से ब्रह्म और आंतरिक दृष्टि से आत्मा कहते हैं। ये एक ही परमतत्व के दो नाम हैं। आत्मा और परमात्मा, जीव और ब्रह्म में किसी प्रकार का भेद नहीं है। जीव ही ब्रह्म (तत्वमसि) है आत्मा ही परमात्मा (अहमास्मि परमात्मा) है। आत्मा (जीव) और विश्वात्मा (ब्रह्म) में अभेद है।

उपनिषद दर्शन का मुख्य–विषय परमतत्व का स्वरूप है। यह परमतत्व ब्रह्म ही माना गया है। ब्रह्मतत्व ही आत्मतत्व है। आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं अतः उपनिषद का परमसत्ता संबंधी विचार अद्वैतवाद कहलाता है, क्योंकि उपनिषदों में एक ही ब्रह्म या आत्मतत्व को परमार्थ तत्व माना गया है ब्रह्म को कूटस्थ नित्य, परिणामी चैतन्य स्वरूप बतलाया गया है तथा सच्चिदानंद, अद्वितीय आत्मा को ब्रह्मरूप ही कहा गया है। ईश्वर के स्वरूप से ही प्रकट होता है कि ईश्वर एक परमसत्ता है। सत्ता बिना गुण के नहीं और गुण बिना पदार्थ के संभव नहीं। अतः ईश्वर में ऐसे गुण पाये जाते हैं जो उसे अनिवार्य सत्ता और उपास्य बना देते हैं तात्विक दृष्टि से ईश्वर अद्वय, अनन्त, आध्यात्मिक, नित्य, सर्वशक्तिसम्पन्न और निरपेक्ष है। धर्म की दृष्टि से ईश्वर व्यक्तित्वपूर्ण, सृष्टिकर्ता, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, अनन्त, सहानुभूतिशील के अनुसार ईश्वर के गुणों को दो रूपों में विभाजित किया जाता है (अ) ईश्वर का तात्विक गुण (ब) ईश्वर का नैतिक गुण। (अ) ईश्वर का तात्विक गुण :–

1. सर्वशक्तिमत्ता
2. सर्वव्यापकता
3. सर्वज्ञता और पूर्वज्ञान
4. नित्यता

सर्वशक्तिमत्ता

धर्म में सदैव से ही ईश्वर को एक परम शक्तिशाली सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। सर्वशक्तिमत्ता से यह अर्थ प्रकट होता है कि वह शक्ति जो जगत की समस्त वस्तुओं को अंग्रेजी में 'अपनीपोटेन्स' कहते हैं। इस शब्द का प्रयोग आगस्टाइन से अनन्त सन्निहित है अतः यह सर्वशक्तिमान है। सर्वशक्तिमान से यह भी प्रकट होता है कि जो कोई नहीं कर सकता उसे सर्वशक्तिमान सम्पन्न ईश्वर कर सकता है। यह धारणा धर्म के इतिहास को देखकर स्पष्ट हो जाती है। प्राचीन धर्म से यही शक्ति जीवात्मा के रूप में कल्पित की गयी या वही शक्ति 'माना' के रूप में भी देखी जाती है। अनेकेश्वरवाद अनेक ईश्वरों की शक्ति में विश्वास करता है और फिर एकेश्वरवाद में एक परमसत्ता ईश्वर ही सर्वशक्तिमान सत्ता है। यह अपरिमित, अनंत तथा अनादि है। अपनी सर्वशक्तिमत्ता के कारण ही वह जगत की रचना करता है उसे धारण करता है और उसका विनाश भी करता है। जगत का कोई भी कार्य उसकी शक्ति के बाहर नहीं है। ईश्वरवादी धारणाओं में ईश्वर असीम और सर्वशक्तिमान सत्ता माना जाता है। ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के विषय में शंका उत्पन्न हो सकती है क्योंकि रचना या बनाने के लिए पहले से उपस्थित वस्तु की आवश्यकता पड़ती है। जैसे कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है। अतः यदि ईश्वर सृष्टि की रचना करता है तो इसका अर्थ हुआ कि वह जगत की पूर्वावस्थित वस्तुओं को सहयोग लेता है। यदि ऐसी बात है तो फिर ईश्वर सर्वशक्तिमान नहीं रहा। किन्तु ईश्वर को निर्माणकर्ता माना गया है जबकि वह सृष्टिकर्ता है। निर्माणकर्ता को तो दूसरी वस्तुओं की आवश्यकता निर्माण के लिए होती है परन्तु सृष्टिकर्ता तो एकमेव सत्ता है और वह किसी दूसरी वस्तु पर निर्भर नहीं है। भारतीय मत में तो सृष्टि रचना से ईश्वर की पूर्णता न घटती है न बढ़ती है। सृष्टि रचना के द्वारा सत्ताएं उत्पन्न की जा सकती है पर सामान्य सत्ता ज्यों की त्यों बनी रहती है।[5] अतः सृष्टि रचना के कारण ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता ही सिद्ध होती है, न कि सीमितता।

ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता से यह भी प्रकट होता है कि ईश्वर चाहे जो भी कर सकता है। फिर तो यह प्रश्न उठता है कि क्या ईश्वर असंभव को भी संभव कर सकता है ? या दो और दो को मिलाकर चार के स्थान पर पांच कर सकता है, त्रिभुज को वर्गाकार कर सकता है ? या वह पाप और हत्या भी कर सकता है? यदि यह कहा जाये कि

ईश्वर सीमित है तो इसका अर्थ हुआ कि वह अपने ही नियमों और गुणों से सीमित है। यह सीमितता की असीमितता की सीमितता। ईश्वर शाश्वत और अनन्त है। उसकी अनन्तता में जब विरोधी बातें होगी तभी वह सीमित समझा जाएगा। इसीलिए असंभव की संभावना नहीं हो सकती।

सर्वव्यापकता –

ईश्वर का यह भी गुण माना जाता है कि वह सर्वस्वामी है। वह विश्व की प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। ईश्वर की सर्वव्यापकता की धारणा में धर्म की प्रारम्भिक अवस्था से ही देखी जा सकती है। आदिम काल में ईश्वर स्थान विशेष तक ही सीमित था अर्थात् किसी विशेष स्थान पर जाने से ईश्वर की व्यापकता का अनुभव किया जाता था। बहुदेववादी धारणा में विशिष्ट क्षेत्रों और कार्यों के मध्य विशिष्ट ईश्वर व्याप्त समझा जाता था, परन्तु विश्वव्यापी धर्म में एक सर्वशक्तिमान ईश्वर ही सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त समझा जाने लगा। सर्वत्र ईश्वरभाव या आत्मभाव की धारणा संभवतः जीववादी धारणा का परिणाम है। संसार की समस्त वस्तुओं में आत्मा का निवास है, यही धारणा ईश्वर की सर्वव्यापकता का मूल आधार कही जा सकती है। ईश्वरवादियों के लिये ईश्वर की सर्वव्यापकता धार्मिकता की दृष्टि से परम आवश्यक है। यदि ईश्वर हमारे निकट सम्पर्क में नहीं होगा, यदि वह विश्व की रचना करके विश्वातीत हो जाएगा, जैसा कि देववादी मानते हैं तो वह उपास्य नहीं हो सकता। भगवान के विश्वातीत होने से भक्त की आकांक्षा पूरी नहीं हो सकती। अतः ईश्वर का विश्वव्यापी होना आवश्यक है। वह विश्व का प्राण है उसके अभाव में विश्व की किसी वस्तु की सत्ता संभव नहीं कही जा सकती।

सर्वज्ञता और पूर्वज्ञान –

ईश्वर का एक विशेष गुण यह भी है कि वह सर्वज्ञाता है। उसे जगत की घटनाओं का पूर्वज्ञान रहता है। वह भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान रखता है। उसके ज्ञान की सीमा नहीं है। यह सृष्टि उसी की है इसलिये यह सर्वज्ञ है। कहा जा सकता है कि जिसने मानव शरीर की रचना है तो क्या वह शरीर विज्ञान के नियमों से अनभिज्ञ कहा जा सकता है ? उसने सम्पूर्ण विश्व का निर्माण किया है, विश्व में एक नियम और व्यवस्था है। अतः नियामक और व्यवस्थापक के रूप में ईश्वर को सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान है। मानव के ज्ञान और ईश्वर के ज्ञान में बहुत अन्तर है। मानव का ज्ञान सीमित और अल्प होता है। परन्तु ईश्वर का ज्ञान अनन्त और असीम होता है। मानव के ज्ञान में ज्ञाता और श्रेय का भेद बना रहता है जबकि ईश्वर के ज्ञान में इस प्रकार का द्वैत नहीं रहता। मनुष्य का ज्ञान तार्किक होता है परन्तु ईश्वर का ज्ञान अनन्त और असीम होता है। मानव के ज्ञान में ज्ञाता और श्रेय का भेद बना रहता है। जबकि ईश्वर के ज्ञान में इस प्रकार का द्वैत नहीं रहता। मनुष्य का ज्ञान तार्किक होता है परन्तु ईश्वर का ज्ञान सहज ज्ञान से होता है जिसका स्वरूप अद्वैत होता है। अतः ईश्वर मनुष्य की दृष्टि से पूर्ण ज्ञानी है, सर्वज्ञ है। मानव की धार्मिक चेतना के विकास के साथ–साथ ईश्वर की सर्वज्ञता का भी विकास देखा जाता है। आदिम धर्म में मानव टोलियों में रहता था इसलिये उसका ईश्वर केवल उसकी टोली का ही सर्वज्ञाता था। अनेकेश्वरवाद या ईश्वर अलग–अलग विभागों का ही सर्वज्ञान रखता था, परन्तु एकेश्वरवाद में वही ईश्वर सम्पूर्ण विश्व का सर्वज्ञाता हो जाता है। उसके ज्ञान से परे विश्व की कोई वस्तु या घटना नहीं जा सकती।

नित्यता –

मानव की धार्मिक चेतना में ईश्वर अनन्त और नित्य सत्ता के रूप में ही प्रकट होता है। आदिम धर्म में भी वह सत्ता चाहे जीव के रूप में ही क्यों न रही हो, उसके प्रतिनित्यता, असीमितता की भावना अवश्य जुड़ी हुई थी। मानव में ईश्वर की नित्यता का भाव इसीलिए प्रविष्ट हुआ जान पड़ता है कि मनुष्य अपने असीम और अनित्य पाता है। उसे सभी कुछ परिवर्तनशील, क्षणभंगुर और नाशवान दिखायी देता है। मानव ईश्वर में यह कमी नहीं पाता।

ईश्वर जब सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञाता और सर्वव्यापी है तो अवश्य ही वह नित्य तथा अनन्त होगा।

ईश्वर का नैतिक गुण :

नैतिकता से शून्य धर्म का कोई अर्थ नहीं होता। दोनों का अपरिहार्य सम्बन्ध देखा जाता है। धर्म के विकास में देखा गया है कि अनेकेश्वरवाद में ईश्वर के मानवीकरण के साथ ही साथ ईश्वर में नैतिकता का आरोपण किया गया। नैतिकता से शून्य ईश्वर की उपास्थता संभव ही नहीं रह जाती। धार्मिक व्यक्ति के लिये ऐसे ईश्वर की आवश्यकता होती है जो मानव–शुभ को ध्यान में रखे, क्षमाशील, दयावान और न्यायी हो। व्यक्ति उसके समक्ष भीषण परिस्थितियों में अपने अन्तर्मन की व्यवस्थाओं और व्यग्रताओं को अर्पित करता है। शरण में जाकर शान्त और निश्चिन्त होता है। इस विभिन्न धर्मों में ऐसे ही ईश्वर की धारणा पाते हैं। यहूदी और इस्लाम धर्म का न्यायाधीश ईश्वर ईसाई धर्म का प्रेममय ईश्वर और हिन्दूधर्म का क्षमाशील दयालु, शरणदाता और पापों से उद्धार करने वाला ईश्वर नैतिक गुणों को ही प्रकट करता है। इस प्रकार ईश्वर के निम्नलिखित नैतिक गुणों की चर्चा की जा सकती है –

1. सत्य और शुभ
2. न्याय परायणता
3. प्रेम
4. दयालुता तथा क्षमाशीलता

सत्य और शुभ –

सत्य और शुभ ईश्वर के स्वाभाविक अंग है। इसीलिए ईश्वर को भारतीय मत में सच्चिदानन्द कहा जाता है। ईश्वर ही सत्य है। सत्य उसका तात्विक और नैतिक गुण दोनों है। सत्य से परे उसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती। कुछ नैतिकवादी इसीलिए सत्य को ही ईश्वर की संज्ञा देते हैं और ईश्वर को सत्य का प्रतीक मानते हैं। सत्–स्वरूप ईश्वर में सभ्यता का नैतिक गुण वर्तमान है। वह परमसत् कल्याणमय है। शुभ या कल्याण सत्य से अनिवार्यतः जुड़ा हुआ है। ईश्वर को परमशुभ भी कहा जाता है। मानव में शुभ औ सत् संघर्ष के फलस्वरूप होती है परन्तु ईश्वर में ये दोनों गुण स्वाभाविक अंग के रूप में है। इसीलिए ईश्वर को परमसत् एवं परमशुभ भी कहा जाता है। मानव में सत् एवं शुभ आंशिक होते हैं परन्तु ईश्वर में इन गुणों की पूर्णता होती है।

न्यायपरायणता –

ईश्वर परमन्यायी है। वह जीवों के कर्मों के अनुसार न्याय करता है। सभी धर्मों में ईश्वर की न्याय परायणता प्रसिद्ध है। ईश्वर की न्याय परायणता को भविष्य के जीवन और ईश्वर की न्याय परायणता को भविष्य के जीवन और ईश्वर में विश्वास न होता तो वह कितने अत्याचार करता, इसकी सीमा नहीं आंकी जा सकती। ईश्वर जो स्वयं न्यायशील है विश्व की न्यायपरायणता को संरक्षित कता है।

प्रेम –

ईश्वर प्रेमस्वरूप है। भारतीय मत से ईश्वर को 'रसो वै सः' कहा गया है। पाश्चात्य ईसाई साधकों में भी 'प्रेम ही ईश्वर है' ऐसा कहा है। भारतीय धर्मों में ईश्वर को प्रेममय मानकर ही माता–पिता सखा आदि विभिन्न संबंधों से जानने का उल्लेख मिलता है। ईसाई धर्म में 'प्रेम–पिता' की कल्पना की गयी है। वह जगत ईश्वर के प्रेम का

प्रकाश है। प्रेम के नैतिक गुण से ही ईश्वर मानव को आकृष्ट करता है। वह मानव का उपास्य है।

दयालुता और क्षमाशीलता –

ईश्वर सृष्टिकर्ता है। वह जगत के प्रति कठोर एवं नृशंस कभी नहीं हो सकता। वह सृष्टि का पालन और संरक्षण करता है, जीवों का उद्धार करता है। ईसाई धर्म और हिन्दू में ईश्वर पापों का उद्धारकर्ता भी है। यदि जीव शरण में जाता है तो ईश्वर दया से द्रवित होकर उसके पापों को क्षमा करके उसका उद्धार करता है।[6] वह अशरण का शरण है। उसका जगत के प्रति प्रेम ही दयालुता और क्षमाशीलता के रूप में प्रकट होता है।

***व्याख्याता**
सामान्य संस्कृत,
राजकीय आचार्य संस्कृत, महाविद्यालय
भरतपुर, (राज.)

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. कुसुमांजलि 5; सर्वदर्शन संग्रह, अध्याय 11, तर्क संग्रह और दीपिका, पृ. 21–22
2. यस्तु सर्वाणि भूतान्यामन्येवान पश्यति।
   सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते। ईशावस्योपनिषद्, 6
3. यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्यति।
   तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति। गीता 6–30
4. य तो व इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्तयभिसंविशन्ति ताद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रहनेति। तैत्तरीय उपनिषद
5. मसीह–धर्म–दर्शन–प्राच्य एवं पाश्चात्य, पृ. 344 पर उद्धृत टामसन के विचार।
6. गीता, 18–66